आत्माराम की होली

श्री श्री माँ सर्वाणी

ऋतुओं में श्रेष्ठ है बसन्त। इसी बसन्त ऋतु में ही श्रीकृष्ण की होली उत्सव भी मनाया जाता है। बसन्त में विश्व प्रकृति के सौन्दर्य का एक अद्‌भुत साम्यभाव परिलक्षित होता है। इस ऋतु में शीत एवं ग्रीष्म या शीतलता और उष्णता का सामरस्य ठीक वैसा ही होता है जैसा कि योगी के अभ्यन्तर में अग्नि का तेज एवं स्निग्ध एवं चान्द्रीसुधा का सम्मिलन होता है। आधार में कुलकुण्डलिनी शक्ति का पुनर्जागरण होने पर देहाभ्यन्तर में योगी काफी उष्णता का अनुभव करते रहते हैं। इस उष्म भाव का अवसान तभी होता है जब मस्तक पर सहस्रार स्थित चान्द्रीसुधा योगी के मध्य अविरत अवतरण करती रहती है एवं तब यह नाभिचक्र की अग्नि को शीतल कर देती है जिसके फलस्वरूप योगी की देह अमृतमय हो जाती है। यह अवस्था प्राप्त करने पर योगी प्राणायाम सिद्ध हो जाते हैं। तब हृदय में प्राण की गति स्थिर हो जाती है। हृदय में प्राण के स्थिरत्व से योगी 'केवल' अवस्था लाभपूर्वक आत्माराम का दर्शन एवं उपलब्धि करने में सक्षम होते हैं। अर्थात् योगी की चेतना तब चैतन्य सागर में चारों और फैल जाती है। चेतना से चैतन्य सागर में अवगाहन कर ब्रह्मानन्द के हिल्लोल के स्पर्श से योगी के हृदय में भी हिल्लोल उठने लगते हैं। उस अवस्था में उपनीत होकर सुरत योगी महात्मा कबीर साहब ने कहा है:—

महात्मा कबीर

''होरी खेले सन्त सुजान, आतम राम सों ॥
घड़ि घड़ि पल पल छिन छिन खेलैं, निसदिन आठो जाम ॥
पंडित खेलैं चार वेद से, मुलना किताब कुरान ॥
पतिबरता खेलैं अपने पिया संग, वेश्या सकल जहान ॥
महाप्रचण्ड तेज माया को, सब जग मारा बान ॥
कामी खेलैं कामिनी के संग, लोभी खेलैं दाम ॥
साहब कबीर खेलैं संतन सौं, और न काहु काम ॥''

—अर्थात्, आत्माराम के संग संत सुजान निशिदिन अष्टप्रहर, प्रति घड़ी में, हर पल में होली खेलते हैं। इस भौतिक जगत् में सभी किसी न किसी प्रकार से होली खेलते रहते हैं—जैसे योगीगण योग—ध्यान के मध्य खेलते हैं, पण्डित चार वेदों के साथ खेलते हैं एवं मौलवी कुरान ग्रन्थ के साथ खेलते हैं। फिर पतिव्रता रमणी अपने प्रिय के संग खेलती है एवं वैश्या समाज के साथ खेलती है। कबीर साहब ने इसलिए कहा है कि माया के ऐसा प्रचण्ड तेज है कि इसने सर्वत्र सबको अपने बाणों से विद्ध कर रखा है। कामी कामिनी के संग होली खेलती है एवं लोभी रिपुओं के संग खेलता है किन्तु महात्मा कबीर निष्काम भाव से संतगणों के साथ होली खेलते हैं आत्माराम के साथ युक्त होकर। आत्म-सत्ता के वक्ष पर सच्चिदानन्द के स्पर्श का हिल्लोल ही ''होली'' है।

साधक नाना प्रकार की साधना की सहायता से कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करा सकता है। कुण्डलिनी शक्ति के जागृत होने पर साधक के अन्तर में घटाकाश पर जो स्फुरण होता है, उसे ही नाद कहते हैं। नाद से ही ज्योति का स्फुरण होता है। ज्योति का व्यक्त रूप महाबिन्दु है एवं इस महाबिन्दु के तिन रूप हैं—इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया। इनको प्रतीकात्मक भाषा में सूर्य, चन्द्र, अग्नि यथा ब्रह्मा(अग्नि), विष्णु(सूर्य), शिव(चन्द्र) कहा जाता है। इस प्रकार नाद के भी तिन रूप हैं—महानाद, नादान्त और निरोधनी। जीव सृष्टि में जो नाद उत्पन्न होता है, वह है ॐकार। इस ॐकार को ही शब्द ब्रह्म कहा जाता है। देहाभ्यन्तरस्थ षट्चक्रादि भेदन करत: योगी सहस्रार के श्री बिन्दु पर भ्रामरी गुफा में अवस्थान कर परासंवितमय् अमृत् पान करने में सक्षम होते हैं। तब योगी के मध्य संकल्प—विकल्प भाव तिरोहित होकर योगी सहज अवस्था को प्राप्त करता है। सहजावस्था में अमृत के परश से हृदय कमल के संग चेतना संयुक्त होने पर योगी हृदय में प्रेमपूर्ण सौन्दर्यबोध समरस्यता लाभ करता है। तब योगी साधक आत्मानन्द का हिन्डोल हृदय में अनुभव कर अजपा जप के छन्द में विभोर हुआ रहता है। इस विषय को महात्मा कबीर साहब ने ''राम नाम का रसायन पान करना'' बताया है :—

''कोई पीवे रस राम नाम का, जो पीवे सो जोगी रे,
सती सेवा करो राम की और न दुजा भोगी रे।
यहुँ रस तो सब फीका भया ब्रह्म अग्नि पर जावी रे।
ईश्वर गौरी पीवन लागे राम तनी मतवाली रे।

चन्द्र सुरे दोई भाँती किन्ही सुखमनि चिगवा लागी रे।
अमृत को पी सांचा पुरया मेरी तृष्णा भागी रे।
यह रस पीवे गुंगा महिला ताकि कोई न बुझे सार रे।
कह कबीर तहा रस मन्हगा को जोगिया जीवन हार रे।''

—अर्थात् चन्द्र और सूर्य के मध्य स्थल पर सुषुम्ना में चित शक्ति की सहायता से राम रसायन की उत्पत्ति है। सच्चे योगीगण इस राम रसायन का पान कर अर्निवचनीय आनन्द अनुभव करते हैं। ईश्वर और गौरी इस राम नाम के रसायन का पान कर आनन्द में निमग्न रहते हैं। इस राम नाम की रसायन वटी एक अमूल्य सम्पद है। इस रस का वही आस्वादन कर सकता है जिसने अपना सर्वस्व त्याग दिया हो। राम रसायन रूपी प्रेम का प्याला पान करने से कुण्डलिनी स्वयं जागृत हो उठती है। महात्मा कबीर यह राम रसायन रस पान कर नशे में विभोर हो गए। उस अवस्था में उपनीत होकर कबीर साहब के अन्तर से वाणी निसृत हुई—

''हिन्डोलना तह झुले आतमराम
प्रेम भगति हिन्डोलना सब संतन को विश्राम
चन्द सुर दुई खम्मवा बंक नालि की डोरी रे
झुले पंच पियारियाँ तह झुले जीय मोर।''

—अर्थात्, जिस स्थान पर डोलने में डोल रहे हैं स्वयं आत्माराम; वह प्रेम भक्ति का डोलना है; सब सन्त महात्मा वहाँ विश्राम करते हैं। वहाँ चन्द्र-सूर्य दो स्तम्भों के मध्य बंकनाली की डोरी है, उसी में पंचतत्व का रूप प्रकटित रहता है एवं वहाँ महात्मा कबीर का निज अस्तित्व बोध भी दोदुल्यमान रहता है। उपलब्धि के आसन पर 'हिलन या झूलन' तथा 'दोलन' या 'दोल' एक ही ब्रह्मानन्द के रस विशेष हैं। इस स्थल पर महात्मा कबीर ने प्रेम एवं योग को दोलन या दोल या झूलन तत्व के माध्यम से एकरस किया है।

आत्मद्रष्टा, सत्यद्रष्टा, सिद्धयोगीगण आत्मानन्द के मध्य ही सच्चिदानन्द के परमानन्द को उपलब्धि कर नित्य होली निज अभ्यन्तर में खेलते हैं। इसलिए कबीर साहब ने बताया—

''नित मंगल होरि खेलिये हो ॥
अहो मेरे सन्तों नित ही बसन्त नित फाग ॥
दया धरम की केशर घोरो। प्रेमप्रीति पिचकारी ॥
भाव भगत सों भरि सत्गुरू को, सुफल जनम नरनारी ॥
छिमा अबीर चरचित चन्दन। सुमरन ध्यान धमारि ॥
ज्ञान गुलाल अगर कस्तुरी। उमंगि उमंगि रंग डारि ॥
चरणामृत प्रसाद चरणरज, अपने शीश चढ़ाए ॥
लोक लाज कुल कानि मेटिके, निर्भय निशान बजाय ॥
कथा कीर्तन मग्न महोछब, करि संतन की भीर ॥
कबहुँ न काज बिगड़ है तेरो। सत सत कहें कबीर ॥''

—अर्थात्, अहो, मेरे सन्तों! तुम नित्य ही ऐसी मंगलमयी होली खेलो जिससे तुम्हारे जीवन में नित्य ही बसन्त एवं फाग उत्सव हो। दया धर्म की केशर घोलकर उसे प्रेम प्रीति रूपी पिचकारी में भरो एवं सद्गुरू प्रदत्त भक्ति भाव की सहायता से मनुष्य जन्म को सार्थक करो। क्षमा भाव की अबीर एवं चन्दन चर्चित होकर सर्वदा स्मरण एवं ध्यान के संगीत में रत रहो, जिसके फलस्वरूप लोहित अबीर के रंग से ज्ञान एवं सुगन्धित कस्तुरी का सुवास ध्यानाकाश में नव-नव रूप एवं रंग में प्रकाशित हो। तुमलोग सद्गुरू के चरणामृत रूपी प्रसाद एवं चरणरज निज मस्तक पर धारण कर लोक समाज में लाज-लज्जा कुल का मान सर्वस्व परित्याग करके निर्भय सत्य की विजय पताका रुपी ध्वजा कीर्तन महोत्सव में मगन होकर फहराओ। कबीर साहब कहते ह—''मैं सत्य कह रहा हूँ, इस प्रकार ईश्वरीय सत्वृत्ति में रहने से किसी दिन तुम लोगों का लक्ष्य या कर्म व्यर्थ नहीं होगा।''

जहाँ योगी नित्य बसन्तोत्सव मनाते हैं वहाँ न तो कोई द्वन्द्व होता है, न ही कोई व्याधि और न ही कोई दैन्यता बोध होता है। वहाँ सभी सहजावस्था को प्राप्त होते हैं। उस अनाविल प्रेमराज्य में प्रविष्ट होने पर योगी सहज योग में उपनीत होकर श्रीपुरूषोत्तम के रास मण्डल की नित्यलीला का दर्शन एवं उपलब्धि करने में सक्षम होते हैं। दिव्य भाव में विभोर कबीर साहब ने प्रेमसिक्त हृदय में नित्य रास को अनुभव कर परमात्मा की होली या होरीतत्व के मर्म को हृदयंगम किया। परम उपलब्धित सत्य के आसन पर स्थिर अटल अवस्था में उपवेशन कर महात्मा कबीर साहब ने होली खेलने के महाभावमय यौगिक तत्व को साधक योगीगणों के समक्ष इस तरह व्यक्त किया—

''होरी होरी रंग बोरी बिरहा झकोरी मारी
चौवा चाल अरगजा रहनी करनी केशर घोरी
प्रेम प्रीति सों भरी पिचकारी रुम रुम रंगी सारी हमारी
बाजत ताल मृदंग बिना कर बिना शब्द रसाली
खेलत है कोई सुघर खेलैया योग जुगति लागि तारी हमारी।
इंगला पिंगला रास रच्यो है सुखमनि बाट बुहारी
सुरति निरति दोऊ नाचन लागी बढ़ूयो रंग रति अपारी।
या विधि होरी खेली सन्तों या होरी दिन थोरी।
गुरू कबीर आतम परमातम खेलत बहियाँ जोरी ॥''

—अर्थात् महाभाव में होली के रंगों में हठात् प्राणों के तरंग की चमक से समग्र आकाश मंडल में होली का रंग मानो योगी के अन्तराकाश में भर जाता है। चतुरंग चाल एवं दिव्य सुगन्ध के आवेश में केशरिया रंग का तरल योगी के भक्ति रस में वैराग्य भाव को प्रकाशित करता है। तब योगी प्रेम प्रीति द्वारा पिचकारी पूर्ण करते हैं एवं अपना रोम रोम प्रेमप्रीति के रंग से रंग लेते हैं। फिर ऐसा अनुभव होता है मानो समग्र गगन मण्डल में एक आदिताल नियमित छन्द में ध्वनित हो रहा है एवं इसके साथ बिना किसी के हस्तस्पर्श किये मृदंग वीणा भी मधुर स्वर में अविरत बजते जा रहे हैं। ऐसी रसवन्त होली योग साधना में पारदर्शी सिद्धयोगी ही खेल सकते हैं। सिद्धयोगीगणों की यह एक विशिष्ट प्रकार की योग साधना है। इस योग साधना में इड़ा पिंगला एवं सुषुम्ना नाड़ी के पथ में रास रचित होता है एवं तन्मध्य सुषुम्ना का पथ सबसे श्रेष्ठ होता है। सुषुम्ना, इड़ा और पिंगला में 'सुरति' और 'निरति' नामक दो मार्ग की धारा नृत्य करती रहती है। सुरति की धारा अन्तर्मुखीन गति और निरति की धारा वर्हिमुखीन गति है, इसीलिए अन्तर एवं वाह्य रतिरूप प्रेम का खेल होली के माधुर्य को बढ़ा देता है। इस विधि से ही सन्त होली खेलते हैं अपने आत्म बोध से युक्त होकर; वहिरंग में होली का समय कम होता है। गुरू कबीर आत्मा और परमात्मा के साथ सम्मिलित होकर होली खेलते हैं।

सन्त कबीर की रचनाओं में जीवन-मुक्त और विदेह-मुक्त इन दो प्रकार के साधक योगियों की वर्णना मिलती है। जीवन-मुक्त योगी काम क्रोध एवं विषय तृष्णादि से सर्वदा मुक्त रहते हैं। उनके मन में सदैव प्रसन्नता अवलम्बन करती है एवं वे सत्य पर अटल रहते हैं। वे कभी दुसरों की निन्दा नहीं करते। सर्वदा श्रीभगवत् चरणों में उनकी अनुरक्ति पाई जाती है। जीवन-मुक्त साधक योगी के शीतल हृदय में समदर्शी, धीर एवं सन्तोष भाव सदा ही परिलक्षित होता है। जो जीवन-मुक्त होते हैं वे भौतिक संसार की आशा भी नहीं करते; उनका अहंकार नष्ट हो जाता है एवं स्वभाव में किसी भी प्रकार का विकार नहीं देखा जाता। वे अत्यन्त दयालु, विनम्र एवं निरभिमानी हो जाते हैं। ऐसे जीवन-मुक्त साधक ही रामरसामृत आस्वादन कर आनन्द में जीवन यापन करते हैं, कबीर साहब का यही मानना है। दूसरी ओर विदेह-मुक्त भक्तगण ''रामरंगी सदा मतवाले, काया होय निकाया''—ऐसे स्वभावयुक्त हो जाते हैं। विदेह-मुक्त महात्माओं की सर्वदा ही उन्मनी अवस्था परिलक्षित होती है। महात्मा कबीर साहब जीवन-मुक्त एवं विदेह-मुक्त पुरूष थे। उनके प्रति हृदय से हमारी भक्ति विनम्र श्रद्धा अर्पण है—

''ऐसे खेलत फाग बसन्त, निरंजन सहज सुन्न में होरी।
बाजत ताल मृदंग झांझ डफ्, अगम-निगम की डोरी।
मन एक भंवर कोकिला गुंजे, सोहम् सोहम् सोरी।
अष्टकमलदल भीतर मनुआ, त्रिकुटीमहल रचोरी।
कोटि भानु जगमग उजियारो, जह मनुवा बिलमोरी।''

—हिन्दी अनुवादः मातृचरणाश्रिता श्रीमती सुशीला सेठिया

भजन-चेतावनी

कृष्ण नाम भजो मन भजो हरि नाम।
गुरू नाम बोल रे मन जपो राम नाम।।
सत्य है एकही नाम, वह है गुरू नाम,
ये संसार, मायाका सपना छल कपट का धाम ।
सदा जपो हरि नाम, वह है गुरू नाम।।
जैसे गंगा बहती जाए, सब नदीया चलती जाए
मिलती सबही एक ही स्थान, सागर जिसका नाम।।
एक ही पथ है सबका, सबही पाए एकही धाम
सभी भजो हरि नाम, वही है सत्गुरू नाम।।

—श्रीमती मनिदीपा श्याम

राम नाम महिमा

'राम' शब्द में है दो अक्षर
हृदय में जपो राम नाम निरन्तर।
राम ज्योति है आत्म साक्षर
हृदय में बसै 'राम' आत्म पूरंदर।।
राम रूप में है विज्ञान का ज्ञान
राम में देखो पुरूषोत्तम-मान।
राममय होकर आत्मराम को
देखो निरन्तर अक्षय पद को।।

—श्रीश्रीमाँ सर्वाणी